'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक १२ | वाराणसी, मंगलवार, २७ जनवरी, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

लोकभारती, सणोसरा के परिवार के साथ | सणोसरा ११-११-५८

समाज में ओतप्रोत हुए बिना क्रांति असंभव

अभी थोड़ा नृत्य देखा। यह सारा भगवान कृष्ण का स्मरण है। कृष्ण ने जो किया, वह सारे समाज में ओतप्रोत होकर किया। जीवन का कोई भी अंग बाकी नहीं रहा, जिसमें उन्होंने प्रवेश न किया हो और सबके साथ न रहे हों। नृत्य, संगीत, खेल, गायों की सेवा, घूमना-भटकना, युद्ध, राजनीति, कला-कौशल, तीर्थ-यात्रा धर्म चिंतन, धर्म-प्रवर्तन, तत्त्वज्ञान और अन्त में कुलक्षय। इन सबकी सब प्रवृत्तियों में उन्होंने भाग लिया। कृष्ण सारे समाज के सुख से सुखी और दुःख से दुःखी होते थे। इतना ही नहीं, सारे समाज के पाप-पुण्य को अपना ही पाप-पुण्य समझकर काम करते थे। फिर भी वे अत्यन्त अनासक्त थे।

जब महाभारत का युद्ध हुआ तो उसमें बहुत से मनुष्यों का क्षय हुआ। दुर्योधनादि कौरव समाप्त हो गये। तब गांधारी बहुत दुःखी हुई। भगवान कृष्ण गांधारी से मिलने गये तो उसने कहा कि हे कृष्ण, तुम्हारे ही कारण कौरवों का क्षय हुआ। पांडवों की सेना नष्ट हुई और सबका संहार हुआ, तब अब यादव कैसे बच पायेंगे? निष्ठावान और धार्मिक गांधारी का शाप देने का विचार न होने पर भी यह एक प्रकार का शाप ही था। शाप-वाक्य सुनकर भगवान हँसते हुए कहने लगे—कि "यद् भावी तद् भविष्यति।" जो होनेवाला है, वह जरूर होगा। भागवतकार लिखते हैं कि भगवान कृष्ण का अवतार भूभार दूर करने के लिए हुआ है। इसीलिए सबका पूर्ण संहार उनके निमित्त से हुआ और उनका शरीर भी इसी तरह गिर पड़ा। कृष्ण के चरित्र में प्रेम के सिवा दूसरा कुछ नहीं दीखता। किन्तु यह प्रेम भी संपूर्ण अनासक्त था। गीता में जिन परस्परविरोधी तत्त्वों का अत्यन्त योग्य रीति से समन्वय साधा है, वह कृष्ण भगवान के जीवन में था।

सेवक के नाम पर यह मध्यम वर्ग न रहे

आज सब लोगों में एकरूप होने की इच्छा रखनेवाले सेवक तैयार हो रहे हैं। उन सेवकों को चाहिए कि वे भगवान कृष्ण की तरह उन लोगों में जाकर घुलमिल जायँ, जिनका जीवन-स्तर बहुत नीचे है। तभी वे सच्चे सेवक बन सकेंगे। कृष्ण ने गीता कही। परन्तु उनका नाम तो गोपालकृष्ण ही रहा। सारे भारत में कृष्ण को ग्वाल-बाल, गाय की सेवा करनेवाले के रूप में ही पहचानते हैं। उनका सारा चरित्र जनता की अनासक्त सेवा किस तरह कर सकते हैं, यही बताता है। इसलिए उनके बारे में आसपास के लोगों को ऐसा भास ही नहीं होता था कि वे अपने से कुछ ऊँचे हैं। ऐसे पुरुष अद्वितीय कहलाये जाते हैं, जो लोगों की ऊँचाई से बहुत ऊँचे होते हैं, फिर भी लोगों को भान नहीं होता कि ये अपने से ऊँचे हैं। उनकी उपस्थिति में लोग निःसंशय वर्तन करते हैं। उनके साथ लड़ाई में लड़ते हुए भी संकोच नहीं होता। अब मैं बड़े खतरे का वाक्य बोल रहा हूँ कि उनके सामने लोगों को शराब पीते हुए भी कोई संकोच नहीं होता है। उनकी हाजिरी में अमुक काम कैसे करें? ऐसा प्रश्न ही नहीं उठता!

हमारा सेवक वर्ग इस तरह का अत्यन्त नम्र हो, यह मेरी अपेक्षा है। सेवकों के नाम पर मैं नम्रता का प्रचार करना चाहता हूँ, न कि सेवकों का गिरोह खड़ा करना चाहता हूँ। आज तो सेवक के नाम पर एक अलग मध्यम वर्ग ही खड़ा होता जा रहा है। एक तरफ तो हम वर्गों का निराकरण करते चलें और दूसरी तरफ नये-नये वर्ग खड़े होते जायँ, यह कोई समस्या का हल नहीं होगा। अन्धी बुढ़िया पीसती जाय और कुत्ता आटे को चाटता जाय तो जो हालत होगी, वही हालत हम लोगों की भी होनेवाली है। अगर हम सेवा के नाम पर अपने स्वार्थों का पोषण करने के लिए अलग वर्ग बना लेंगे, वह बहुत बड़ा खतरा है। जिसकी ओर मैं सेवकों का ध्यान बराबर खींचता रहता हूँ।

अपना जीवन लोकमय हो

सेवा करनेवालों को समाज में एकरूप होना चाहिए। आपस में प्रेमभाव रखना चाहिए और नम्रता बढ़ानी चाहिए। इसके लिए एक छोटा-सा मित्रमण्डल बनाया जा सकता है। वह मित्रमण्डल सेवापरायण हो, परन्तु जीवन की दृष्टि से दूसरों से अलग रहनेवाला सेवक-वर्ग तैयार न हो। अपनी ओर अंगुली दिखाकर लोग यह बतायें कि यह भाई सेवक है और हम इसकी सेवा लेते हैं, इसमें सेव्य-सेवक-भावना रहती है। हम इनके ही हैं, इनकी सेवा करते हैं, फिर भी अपना अलग कुछ नहीं होना चाहिए। ऐसा ही लग भग अपने रविशंकर महाराज के जीवन में देखने को मिलता है। रविशंकर

www.vinoba.in

महाराज बिलकुल ही गाँववालों के साथ एकरूप हो जाते हैं। फिर भी उन्होंने अपना व्यक्तित्व खोया नहीं है। यह अपना भाग्य है कि ऐसी मिसाल देखने को मिलती है। परन्तु आश्रम जैसी संस्थाओं में इस प्रकार की न्यूनता मुझे प्रतीत होती है। कुछ कार्यकर्ता सेवा तो करते हैं, फिर भी अपना जीवन दूसरे के जीवन से कुछ अलग रखते हैं। उन्हें मैं यह सुझाना चाहता हूँ कि लोगों का जो धरातल है, उसपर उतरें। अपने नैतिक सिद्धान्तों पर कायम रहकर जो अविचल नीति है, उसका आचरण करें। नीति छोड़कर लोगों में मिल जाने की बात मैं नहीं करता हूँ, परन्तु बाकी दूसरी सब तरह से अपना जीवन लोकमय होना चाहिए।

यह हिंसक खादी का आक्रमण है

आज का वह नृत्य देखकर मुझे लगा कि भगवान कृष्ण का जीवन कितना व्यापक था। समाज के सब अंगों में परिपूर्ण तरह से वे ओतप्रोत हो गये थे। समाज के हर अंग में उन्होंने कुछ न कुछ सुधार किया। इतने बड़े व्यापक तो हम नहीं हो सकेंगे, यह बहुत बड़ी चीज है। परन्तु मैंने गुजरात-प्रवेश के वक्त कहा था कि यह खादी सबको सादी पोषाक पहनाने के लिए है। हम खादी के साथ विलासिता या आसक्ति को प्रश्रय न दें। ऐसी खादी न पहनें, जो कि जनसामान्य से हमें अलग करनेवाली हो, यानी अपनी खादी थोड़ी मिट्टी के रंगवाली होनी चाहिए। मैं जरा भी मलीनता सहन करने को तैयार नहीं हूँ, परन्तु मिट्टी का रंग स्वच्छ नहीं है, यह मानना गलत है। कपड़े में अगर पसीने की बास आये तो उसे मैं अस्वच्छ कहूँगा, पर मिट्टी का रंग अस्वच्छता नहीं है। मटमैलापन एक प्रकार का रंग है, ऐसा समझकर आपको उसका आदर करना चाहिए। एकदम सफेद खादी हमें एक-दूसरे से अलग करती है, इसलिए सादी खादी होनी चाहिए। आज तो इतनी ज्यादा सफेद खादी निकली है कि उसका रंग कपास के रंग से ज्यादा सफेद है। जिसे हम डेड व्हाईट कहते हैं। ऐसी सफेद रंगवाली खादी को मेरे जैसे कमजोर आँखवाले के लिए तो धूप में देखना भी असह्य है। अतः मैंने इस खादी को हिंसक खादी नाम दिया है।

ऐसी खादी अहिंसा में नहीं चलेगी। हिंसक खादी आपपर इतना बड़ा आक्रमण करती है कि उससे हिंसा होती है। अहिंसक खादी से हिंसा नहीं होती है। कहने का भावार्थ यह है कि लोगों की स्थिति सुधारना हम चाहते हैं, यह बात सच है, पर अपना जीवन लोकमय हो सकता है, इतना करने की हमें कोशिश करनी चाहिए। वरना इस असाधारण खादी को पहनकर हम नम्र सेवक नहीं रहेंगे, बल्कि सफेदपोश मध्यमवर्गीय शोषक बन जायँगे। मैंने शुरू में ही यह कहा है कि हम साधारण लोगों से अलग अपना कोई वर्ग निर्माण न करें। जब हम समाज के सेवक बने, तभी हमने अपने आपका पूर्ण समर्पण समाज को कर दिया। इस समर्पण के बाद भी अगर हम साधारण जनता में ओतप्रोत नहीं होते हैं तो आप लोग निश्चित समझ लीजिये कि हम जिस क्रांति को समाज में चरितार्थ करना चाहते हैं, वह कभी सम्भव नहीं है। ● ● ●

संशोधन

["विनोबा-प्रवचन" के वर्ष ३ अंक ८ के पृष्ठ नं० ६४ पर प्रकाशित २०-१२-'५८ के प्रवचन में यह उल्लेख छपा है कि सभा में लगभग एक लाख बालक उपस्थित थे। परन्तु यह संख्या उपस्थित सभी श्रोताओं की है, जिसमें अधिक संख्या बालकों की थी। —सं०]

प्रार्थना-प्रवचन बालम २७-१२-'५८

चिन्तन और कर्म का समाजीकरण

इस तरह लोगों के दर्शन से मुझे बहुत ही आनन्द हुआ करता है। आप इतने सारे भाई-बहन दूर-दूर गाँवों से पधारे हैं और उत्सुकता से बातें सुनना चाहते हैं। यह हमारे और देश के लिए बहुत ही शुभ लक्षण है। अभी एक ग्रामदान और एक शान्ति-सैनिक मिला तथा अमुक गाँव के लोगों ने सर्वोदय-पात्र का संकल्प किया है। याने आजकल मैं देश के समक्ष जो काम रख रहा हूँ, उन तीन कामों के बारे में लोगों ने जो कुछ बताया, वह आप सबने सुन ही लिया।

ग्रामदान देश के लिए अमृतबिन्दु

यह ग्रामदान हमारे देश के लिए अमृतबिन्दु है। जैसे अमृत मिलने पर हम अमर हो सकते हैं, वैसे ही ग्रामदान से हमारे गाँव अमर हो जायँगे। ग्रामदान याने 'जमीन सबकी है'। मानव तो आता और जाता रहता है, पर जमीन कायम ही रहती है। इसलिए 'मानव जमीन का मालिक है' यह बात गलत है। उससे जमीन की सेवा का लाभ थोड़े ही लोगों को मिलता है। बहुत से लोग जमीन की सेवा नहीं कर पाते। इसी कारण हम उन्हें आजीविका का साधन भी नहीं दे पाते। ऐसी स्थिति में जमीन की मालकियत बनाये रखना अन्याय है। जमीन गाँव की होनी चाहिए। अतएव भूमिवान प्रेम से मालकियत का विसर्जन कर दें। जब सारी जमीन गाँव की हो जाय तो उसकी व्यवस्था ग्रामसभा करे। ग्राम के द्वारा ज्यादा जमीन देनेवाले लोगों को ८-१० वर्ष के लिए कुछ अधिक दिया जाय, जिससे उन्हें अपना जीवन चलाने में तकलीफ न हो। इस तरह सभी सन्तोष और शान्ति से जी सकेंगे।

हम यही करना चाहते हैं। हम सभीका सुख चाहते हैं। इसलिए जरूरी है कि सबको जमीन दें। साथ ही ग्रामोद्योगों की स्थापना करें, ताकि लोग एक-दूसरे के सुख-दुःख में भाग लें। कोई अपना दुःख अकेले भोगे, ऐसा न हो, सभी मिलकर उसका दुःख बाँट लें। इस तरह हम एक हों तो गाँव की ताकत बढ़ेगी, जीवन समृद्ध होगा और सबके हृदय में भक्तिभाव कायम रहेगा। इस तरह की योजना का नाम ही ग्रामदान है।

शान्तिसैनिक और सर्वोदय-पात्र हो

फिर सेवा के लिए सेवक आवश्यक होंगे। गाँव और शहरवालों की सेवा के लिए निरन्तर सेवा करनेवाले सेवक चाहिए। मैंने कहा है कि हर पाँच हजार के पीछे एक सेवक के हिसाब से इन सेवकों की योजना की जाय। आपके जिले के लिए तीन सौ सेवक अपेक्षित हैं। वे यहाँ मिलने चाहिए। इतने सेवक यहाँ निरन्त रहें तो वे लोगों के दुःखों का पता लगाकर उन्हें मिटा सकते हैं। कहीं अशान्ति हो जाय तो ये जान को जोखिम में डालकर भी अशान्ति मिटाने के लिए काम करेंगे और शेष समय सतत सेवा करते रहेंगे।

आज ऐसा एक शान्ति-सैनिक बना है, यह सबने सुन लिया है। लेकिन एक ही क्यों? ये इतने सारे लोग आये हैं, उनमें से और कितने ही ऐसे शान्ति-सैनिक मिल सकते हैं। फिर इनको तालीम दी जानी चाहिए। उसके लिए विशेष योजना करनी होगी। हम ऐसी योजना भी करना चाहते हैं।

शान्ति-सेना के लिए जनता की सम्मति चाहिए। तदर्थ हर घर में सर्वोदय-पात्र रखा जाय। इस तरह मैंने ये तीन योजनाएँ की हैं: पहली ग्रामदान, दूसरी रक्षार्थ शान्ति-सेना और तीसरी

www.vinoba.in

शान्ति-सेना के आशीर्वाद के लिए हर घर में सर्वोदय-पात्र की स्थापना। इसका कुछ काम यहाँ हुआ है, यही हम सबने अभी सुना।

हमारे देश में धर्म का नाम चलता है। हमें सोचना चाहिए कि इन बातों में धर्म है या नहीं? देश में धर्म पर प्रेम पाया जाता है और उसपर अपार श्रद्धा भी है। हम लोग पूजा और नामस्मरण भी किया करते हैं। लेकिन वास्तविक धर्माचरण और भक्तिभाव की स्थापना तो तभी हो सकेगी, जब कि हम भगवान को मूर्ति के रूप में न देखकर सभी लोगों में उनका दर्शन करें। मन्दिर में जाकर दर्शन करने और दक्षिणा देकर प्रसाद लेने में ही धर्म की 'इति' नहीं कही जा सकती। वह तो धर्म का 'अथ' याने आरम्भमात्र ही कहा जायगा। जिस तरह बालक 'क, ख, ग' सीखता है, उसी तरह मूर्तिपूजा में भी धर्मशिक्षा और भक्तिभाव का श्रीगणेश है।

दुःख-निवारण का यत्न ही सच्ची करुणा

आज विद्यालयों में जो शिक्षा दी जाती है, उसमें भक्ति या धर्म का नाम भी नहीं रहता। कभी-कभी कालेज के छात्र मेरे पास आकर आत्मा, भक्ति और ईश्वर के विषय में जिज्ञासा किया करते हैं। यह देखकर मुझे संतोष होता है। हमें उस श्रद्धा को क्रिया का रूप देना होगा। याने श्रद्धा तो है, पर वह आज बीमार पड़ गयी है। अतः केवल उसका नाम लेनेभर से काम नहीं चलेगा। हमें उसकी सेवा-शुश्रूषा करनी होगी। हमारे यहाँ एक बहुत ही सुन्दर शब्द है 'करुणा'। करुणा का अर्थ दूसरे के लिए प्रेम ही नहीं, बल्कि दूसरे के लिए कुछ-न-कुछ करने की प्रेरणा होना है। दुःखी का दुःख देखकर स्वयं दुःखी होना ही करुणा नहीं है, बल्कि उस दुःख के निवारणार्थ कुछ प्रयत्न करना ही सच्ची करुणा है।

इसी दृष्टि से आप लोग देश के समक्ष रखी हुई इस त्रिविध योजना पर विचार करें। आज देश में एक ओर जहाँ अमुक भूमिवाले और अमुक संपत्तिवाले हैं, वहीं दूसरी ओर भूमि-विहीन और गरीब भी पड़े हैं। इसीलिए मैं कहता हूँ कि जमीन-वाले भूमिहीनों को भूमि दें और संपत्तिवाले गरीबों को अपनी संपत्ति का एक अंश दें। फिर गरीब भी समाज को अपनी श्रम-शक्ति का दान करता रहे। क्योंकि उसके पास काम की शक्ति है। इस तरह हर व्यक्ति समाज के लिए कुछ-न-कुछ करे, तभी सारा समाज करुणायुक्त कहा जायगा। ऐसा ही करुणापूर्ण समाज बनाने के लिए पिछले सात-आठ वर्षों से मैं पैदल घूम रहा हूँ और सभी बड़े उत्साह से मेरी बात सुनते हैं। यह देखकर बड़ा आनन्द होता है।

गाँव-गाँव स्वराज्य कैसे हो?

आज स्वराज्य हो गया है। यदि हम इसके लिए कुछ भी न करेंगे तो वह नाममात्र का ही स्वराज्य होगा। यदि हम सभी अपना आधार सरकार पर रखेंगे तो भी वह नाममात्र का ही स्वराज्य होगा। जब हरएक को अपने देश और अपने पड़ोसी के लिए कुछ करने की प्रेरणा होगी, तभी स्वराज्य मिला कहा जायगा। स्वराज्य का अर्थ है—हर कोई अपना कर्तव्य समझ-कर देश के लिए कुछ-न-कुछ करे। यदि हम यह मान लें कि वोट दे देने से ही हमारा काम पूरा हो गया तो इसे परतंत्रता ही माना जायगा। आज हम धर्म का काम मन्दिरवालों पर और समाजसेवा का काम चुने हुए प्रतिनिधियों पर सौंपते हैं तो फिर हमारे हाथ में रह ही क्या जाता है? जब हमें देश के लिए कुछ करने की बुद्धि होगी, तभी हरएक को स्वराज्य का अनुभव हो सकता है।

आज तो स्वराज्य दिल्ली में है, गाँवों में नहीं। वस्तुतः जब गाँवों में और घर-घर स्वराज्य का सूर्य उदय होगा, तभी हमारे दुःख दूर होंगे। यदि हम ऐसा चाहते हों तो अपनी-अपनी जिम्मेदारी समझें और अपने साथ अपने पड़ोसी का भी विचार करते रहें। गाँववाले खुद ही अपने गाँव का भार उठा लें, तभी स्वराज्य आया, ऐसा माना जायगा। गाँव में कोई भी दुःखी न रहे, कोई बेकार न रहे। गाँव में कोई भूखा रहे, यह हम सहन न कर पायें, सबको खिलाकर ही खायें। इस तरह सभी गाँवों में हो जाय, तभी सच्चा स्वराज्य माना जायगा। आज तो गाँव स्वतंत्र हैं ही नहीं, हमें उन्हें स्वतंत्र बनाना है। इसीलिए यह कार्यक्रम है। शहरवालों के लिए भी यह कार्यक्रम है। हरएक अपनी संपत्ति का अमुक अंश समाज के लिए दे। मानव के पास जो कुछ है, उसे वह समाज के लिए कृष्णार्पण करे तो गाँव और शहर, दोनों स्वतंत्र हो जायँ।

आज यहाँ कालेज के छात्र आये हैं। अतः उन्हें भी कुछ कहना चाहता हूँ। वे समझें कि मानव के पास तीन शक्तियाँ हैं: (१) विद्या, (२) बल और (३) धन। अब यह देखना है कि अपने बल का उपयोग हनूमानजी की तरह करना है या रावण की तरह? यों बल तो दोनों में था, फिर भी हम स्मरण हनूमान का ही करते हैं, रावण का नहीं। तुलसीदासजी बीमार हुए तो उन्होंने हनूमान की प्रार्थना के लिए 'हनूमानचालीसा' बनाया, 'रावण-चालीसा' नहीं। इसलिए स्पष्ट है कि हमें अपने बल का उपयोग सेवा के लिए ही करना चाहिए। इसी तरह विद्या का उपयोग भी हम केवल अपने स्वार्थ के लिए करते हैं या नहीं, यह भी देखना चाहिए। यदि हम बड़ी नौकरी पाने और श्रीमान बनने के लिए विद्या का उपयोग करते हैं तो वह उसका सदु-पयोग नहीं कहा जायगा। लेकिन यदि समाज-सेवा के लिए उसका उपयोग करें तो वह बहुत अच्छा उपयोग माना जायगा। यही बात धन के बारे में भी है। परमेश्वरप्रदत्त इन शक्तियों का उपयोग हम समाज की सेवा के लिए करेंगे तो उसकी परीक्षा में पास होंगे और यदि हम उन्हें अपने भोग में ही लगायेंगे तो फेल हो जायँगे।

इसीलिए विद्यार्थी लोक-परायण होकर अपना जीवन समाज-सेवा के लिए अर्पण करें। भूदान-ग्रामदान, शान्तिसैनिक आदि काम शरीर और विद्या के सदुपयोग करने के समुचित माध्यम हैं। हम छोटे थे तो हमेशा सोचते थे कि इस शरीर का उपयोग किसके लिए किया जाय? भोग के लिए या सेवा के लिए? अन्ततः उसी समय यह निश्चय किया कि इस शरीर का उपयोग केवल परमेश्वर और लोगों की सेवा के लिए ही करूँगा। परिणामस्वरूप बचपन से अब तक कभी भी मैंने दुःख का अनुभव नहीं किया। लोग कहते हैं कि दुनिया दुःख से भरी है, पर मुझे ऐसा कभी भी अनुभव नहीं हुआ।

अपना सुख दूसरों के सुख में समाविष्ट

सच पूछें तो भगवान ने दुनिया में सुख ही रचा है, पर हम लोग अपनी करनी से उसे दुःख बना लेते हैं। ईश्वर तो हमारा करुणामय पिता है। कौन ऐसा बाप है, जो अपने बच्चों के लिए दुःख की सृष्टि करे? उसने मधुर फल बनाये, लेकिन हम उसकी शराब बना लेते हैं। फिर क्या इसके लिए परमात्मा जिम्मेदार है? यदि हम गाय का दूध जमीन लीपने के काम में लायें तो क्या इसमें उसका दोष माना जायगा? अतः स्पष्ट है कि भगवान ने तो सुख ही सुख रचा, पर हम उसका दुःख बना लेते हैं। भगवान ने हवा दी, पर हमने ऐसे मकान बना लिये,

www.vinoba.in

जिनमें हवा का एक झोंका भी पहुँच पाये। फलतः उनसे रोग पैदा होने लगे। भगवान ने सूर्य की किरणें दीं; जमीन, फल-फूल और शाक-भाजी दी; हमें सुन्दर वाणी और मानव-शरीर दिया। इस तरह उसने हमपर सभी तरह कृपा बरसायी। लेकिन हम इनका सदुपयोग न करें तो क्या इसमें भगवान का दोष कहा जायगा? इसमें कोई शंका नहीं कि भगवान ने दुनिया में सुख ही पैदा किया है। लेकिन हम जीने की कला नहीं जानते। भक्ति नहीं करते और सुख का दुःख बना लेते हैं।

हम अपने सुख को दूसरों के सुख से अलग मानते हैं, इसी कारण एक-दूसरे में टक्कर होती है। फलतः दोनों दुःखी होते हैं। इसपर भी हम अकेले सुख के पीछे दौड़ते हैं तो वह सुख हमसे चार हाथ आगे ही भागता है। इसलिए समझना चाहिए कि सुखी होने के हमारे इस प्रयत्न में निश्चय ही कुछ न कुछ भूल हो रही है। वास्तव में हमारा सुख दूसरे के सुख में ही समाया हुआ है। जब तक हम यह नहीं समझते, तब तक सुखी नहीं हो सकते और यदि हम समझ लेते हैं तो निश्चय ही सुखी होंगे।

सभी कहते हैं कि विनोबा आठ वर्षों से बड़ा ही कष्ट उठा रहे हैं। लेकिन मुझे लगता है कि आप ही लोग काफी कष्ट उठाते हैं। मैं तो सात-आठ वर्षों से सुखी हूँ, इससे पहले भी सुखी ही था। मैंने अपना स्वार्थ समाज के स्वार्थ से भिन्न कभी नहीं माना। मैं जिन्दा हूँ, समाज के लिए। लिखता हूँ, समाज के लिए और कोई काम भी करता हूँ तो समाज के लिए। यही कारण है कि मेरा अपना सारा काम समाज ही उठा लेता है। मैं दो हाथों से लोगों के लिए काम करता हूँ तो लोग हजारों हाथों से मेरा काम करते हैं। आप चाहे जैसे घरों में रहते हैं, लेकिन मेरे लिए अच्छा से अच्छा घर दिया जाता है। मेरे खाने-पीने, सोने आदि की आप लोग कितनी चिन्ता करते हैं! इसी-लिए मैं विद्यार्थियों से कहता हूँ कि आप लोग संकल्प करें कि यह नरदेह केवल सेवा के लिए है, इसका उपयोग भगवान और समाज की सेवा के लिए ही करेंगे। ऐसा करेंगे, तभी भारत की उन्नति होगी।

दुनिया में सबसे बड़ी दौलत आत्मसमाधान है। सभी कुछ कमाया, पर आत्मसमाधान न कमाया तो सब व्यर्थ है। यही कमाने के लिए हमें यह नरदेह मिली है। मेरे श्रीमान मित्र अक्सर कहा करते हैं कि हमें सुख नहीं मिल पाता; पत्नी-बच्चों से नहीं पटती। मैं कहता हूँ, आप सब कुछ संपत्ति को ही मानते हैं और मानते रहोगे, तब तक सुख मिलने से रहा। यह जानकर भी कि आदमी एक दिन मरता है और उस समय सब कुछ यहीं धरा रह जाता है, बाँस की काठी पर ही लड़का आपका शव ले जाता है, फिर भी मरते दम तक आप उसे तिजोरी की ताली नहीं देते, जनेऊ में लटकाये रखते हैं। तब आपको आत्म-समाधान कैसे मिलेगा? श्रीमानों की तरह गरीब भी सुखी नहीं हैं। आशा व आकांक्षाओं के चक्कर में दोनों ही सुख के रास्ते से दूर हैं। इसलिए हम अपने पास जो कुछ है, उसे श्रीकृष्णार्पण कर दें तो निश्चय ही सुखी हो सकेंगे।

श्रीकृष्ण ने गीता में श्रीमुख से कहा है कि जो अपने लिए ही पकाता है, वह पाप खाता है! फिर यदि हम पाप खायें तो सुखी कैसे हो सकते हैं? लेकिन यदि हम दूसरों की चिन्ता करें तो कभी दुःखी न होंगे। मेरा यह अनुभव सभीके लिए उपादेय है। विद्यार्थियों के जीवन तो अभी बनने को हैं। इसलिए यदि वे यह बात अपने जीवन में उतारें तो उन्हें कभी भी दुःख का अनुभव नहीं होगा। ● ● ●

www.vinoba.in

सहकारी सम्मेलन में अंकलेश्वर ३-१०-'५८

मालकियत के रहते सहकारी मंडल शोषण के केन्द्र होंगे

आज सहकारी काम की जो बात चलती है, वह हिंदुस्तान में लगभग पचास साल से चल रही है। गाँव में जनता का सह-कार होता है तो उनकी शक्ति बढ़ती है। यह बात अत्यन्त स्पष्ट है! परन्तु पचास साल पहले जब यह शुरू हुआ, तब इस कार्य को कुछ जोर नहीं मिला था। इसमें बहुत कारण थे। परन्तु मुख्य कारण यह था कि उस वक्त अंग्रेज सरकार थी, इसलिए सहकारी प्रवृत्ति एक तरह से सरकारी प्रवृत्ति थी। सरकार के साथ सम्बन्ध रखनेवाली सभी प्रवृत्तियों के लिए लोगों में ज्यादा सद्भाव नहीं रहा था। सरकारी कार्यों में किसी भी प्रकार का सहयोग करना उस समय नेताओं को और जवान कार्यकर्ताओं को नहीं जँचता था। अब स्वराज्य आया है, उसके बाद भी सह-कारी प्रवृत्ति के लिए विशेष उत्साह गाँव-गाँव में नहीं दीखता है। आर. के. पाटिल अभी चीन जाकर आये। उन्होंने एक रिपोर्ट में लिखा है कि चीन में सहकारी कार्य में हिस्सा लेनेवाले बहुत हैं। वहाँ हजारों और लाखों की संख्या में सहकारी मंडल हैं, जिन्हें देख-कर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। चीन में सहकारी कार्य में भाग लेने के लिए लोगों को उत्साह मालूम होता है और यहाँ उतना उत्साह नहीं मालूम होता है। इसका कारण क्या है?

चीन में जब Communist गवर्नमेंट आयी, तब उसने सबसे पहले मालिकों की जमीनें कब्जे में लीं और समस्त भूमिहीनों में बाँट दीं। जैसे अपने देश में ज्यादा जमीन नहीं है, उसी तरह चीन में भी बहुत जमीन नहीं है। एक-एक परिवार के लिए १। एकड़, १॥ एकड़ जमीन वे दे सकते हैं। परन्तु जितनी जमीन थी, उतनी सब बाँट दी। जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े हो जायँगे, इसके खिलाफ साम्यवादी लोग हैं। वे कलेक्टिव फार्मिंग मान्य करते हैं। फिर भी उन्होंने भूमिहीनों को जमीन बाँटी है। इससे लोगों को लगता है कि यह सरकार अपना हित देखती है और भूमिहीनों तथा गरीबों के हित दृष्टि में रखकर सारा काम करती है। यह श्रद्धा और यह विश्वास लोगों में बैठ गया, तब वहाँकी सरकार ने जमीन के छोटे-छोटे मालिकों से कहा कि आप सब लोग सहकारी मंडली में आ जाइये। इस तरह आर. के. पाटिल ने जाहिर किया है। सर्वप्रथम भूमि-वितरण का कार्य किया गया और उसका परिणाम यह आया कि लोग उत्साह से सहकारी मंडलों में आने लगे।

यह आक्षेप

जब यहाँ हिंदुस्तान में भूदान की और अब ग्रामदान की बात करता हूँ तो यही सवाल आता है। इसमें साम्यवादियों का ही नहीं, पर दूसरे भी लोगों का और विशेष करके कांग्रेसवालों का आक्षेप भी आता है कि जमीन के टुकड़े होते हैं। छोटे-छोटे टुकड़े होने से भूमिहीनों को प्रगति करने में दिक्कत होगी। फिर वे उल्टी दिशा में जायँगे। इस आक्षेप के जवाब मैं अर्थशास्त्र से नहीं देता हूँ। परमार्थशास्त्र से देता हूँ कि भाई, आज जो हृदयों के टुकड़े हो गये हैं, उन्हें जोड़ने का मेरा यह काम चल रहा है। जमीन के टुकड़े करने की प्रवृत्ति नहीं है, हृदय के टुकड़े पहले एक होने दो, उसके बाद जमीन का जो करना है, वह होगा। लोग चाहते हैं कि जमीन का टुकड़ा एक करना है या सहकारी खेती

करनी है तो वे कर सकते हैं। एक बार हृदय जोड़ने दो, फिर जमीन जोड़ने का काम कठिन नहीं है। यह मेरा जवाब आक्षेप करनेवालों को लाजवाब करनेवाला था। उत्तर में कोई कुछ नहीं कह सकता है।

जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े अच्छी तरह से काश्त किये जायँगे, उनको अच्छा खाद मिलेगा, अच्छा बीज बोया जायगा और भूमिहीन उसपर प्रेमपूर्वक मेहनत करेगा तो पैदावार बढ़ सकती है। पैदावार बढ़ाने में बड़े-बड़े टुकड़ों की जरूरत नहीं है। परन्तु अगर मैं यह बात करता तो निकम्मी चर्चा शुरू होती। छोटे-छोटे टुकड़े करने से जमीन में पैदावार कम होती है, ऐसा नहीं है। फिर भी मैंने एक बार तो कह दिया कि यह अनुभव का विषय है। उसमें विचार पक्का बनाने की क्या जरूरत है? एक बार हृदय जोड़ने दो, फिर यह सारा देख लेंगे। अब जरा ग्रामदान की बात।

सहकारी मंडल और विषमता

बहुत लोगों को डर लगता है कि ग्रामदान में कोई मालिक नहीं रहेगा। सब मजदूर हो जायँगे। रूस में जिस तरह कलेक्टिवाइजेशन हो गया, उस तरह यहाँ भी होगा और मनुष्य के हाथ में इनिशिएटिव नहीं रहेगा। अपने हाथ में खेती होने से जो उत्साह होता है, वह इसमें नहीं रहेगा। इस तरह उल्टा आक्षेप करते हैं। पर यह आक्षेप मुझे जरा भी स्पर्श नहीं करता है। क्योंकि मैं यह नहीं कहता हूँ कि सब जमीन बाँटनी चाहिए। ग्रामदान की जमीन की सब जिम्मेवारी गाँव की रहेगी। फिर यह जमीन आप एकत्र रखना चाहते हैं तो रखो, अगर बाँटनी है तो हर परिवार को अलग-अलग बाँट के दो। सारा गाँव एक प्रकार का सहकारी मंडल ही होगा।

अभी जो सहकारी मंडल स्थापित होता है, वह बनाने में अच्छे लोग बहुत ज्यादा उत्साह नहीं दिखाते हैं। लोगों को ऐसा लगता है कि हम लोग इसमें भी परतन्त्र रहेंगे। भूमिहीनों को अथवा जो कम जमीनवाले हैं, उनको ऐसा नहीं लगता है कि सहकारी मंडलों से स्वातन्त्र्य मिलेगा या ग्राम-स्वराज्य आयेगा। उनको तो यही लगता है कि यह भी एक विकेन्द्रित शोषण-योजना होगी। जिसमें थोड़े मालिक रहेंगे और कुछ मजदूर रहेंगे। ऐसी स्थिति में अगर सहकारी मंडल स्थापित किया जायगा तो यह शोषण-योजना होगी। गाँव-गाँव में अलग-अलग सोशियालिज्म स्थापन होगी, ऐसा उनको डर रहता है। इसलिए उनको इतना उत्साह नहीं मालूम होता है। अतः मैं कहता था कि ग्राम-पंचायत अथवा सहकारी मंडलों में लोगों को उत्साह तभी आयेगा, जब जमीन की विषमता आप दूर करेंगे। ग्रामदान से सबका समाधान हो सकता है। इसमें सबका समान तरह से हित होगा।

कम्युनिटी प्रोजेक्ट के मन्त्री मि० डे कहते थे कि हम कम्युनिटी डेवलपमेंट की योजना करते हैं, परन्तु जहाँ कम्युनिटी नहीं है, वहाँ डेवलपमेंट कैसे होगा? ये शब्द उन्हींके हैं। जहाँ गाँव-गाँव में अभी समाज नहीं बना है, वहाँ समाज-विकास कैसे होगा? इसलिए ग्रामदान होने के बाद ग्रामविकास अच्छी तरह से हो सकेगा, ऐसा उत्साह उन्होंने दिखाया है। येलवाल में भी उन्होंने इसी तरह अपने वक्तव्य में कहा था कि हम गरीबों को मदद करना चाहते हैं। परन्तु मदद उन्हीं लोगों को होती है, जो लोग अपनी शक्ति से हमारी मदद खींच सकते हैं। गरीब लोग वह मदद खींच नहीं सकते। बड़े-बड़े पहाड़ जिस तरह मेघ को खींच लेते हैं, उसी तरह बड़े-बड़े मालिक मदद खींच लेते हैं। छोटे मालिक और मजदूरों में मदद हासिल करने की शक्ति नहीं होती है। हम चाहते हैं कि लोगों को सीधी मदद मिले, परन्तु वैसा नहीं होता है। सहकारी मण्डलों में जिस प्रमाण में उनकी मालिकी होती है, उस प्रमाण में उनको नफा मिलता है। इससे सहकारी मण्डल मजबूत हो गया तो दूसरे को चूसने का, शोषण करने का मजबूत संघटन हो जाता है। फिर उसमें मुक्ति प्राप्त करना मुश्किल होता है। ऐसे अगर संघटन नहीं होगा तो खुद प्रयत्न करके मुक्ति पा सकते हैं। परन्तु ऐसी संघटित सहकारी मण्डली बन जायगी तो इतना पक्का संयोजन हो जायगा कि जिससे कायम के लिए गुलामी बनी रहेगी, ऐसा मैं मानता हूँ।

मि० डे का डर अस्वाभाविक नहीं था, अवास्तविक नहीं था। यह विचार हम लोगों को करना चाहिए, क्योंकि इसमें जो लोग आते हैं, वे गरीबों का हित हो, ऐसी इच्छा रखनेवाले होते हैं। अगर मुझे ऐसा लगता कि इस कामवाले सभी शोषण के लिए प्रयत्न करते रहे तो मैं उनका स्पष्ट शब्दों में निषेध करता कि यह गलत काम है। इसे एकदम बन्द करना चाहिए। परन्तु मुझे विश्वास है कि इसमें जो लोग आये हैं, वे सद्भावना से आये हैं और गरीबों की गरीबी मिटनी चाहिए, उनको राहत मिलनी चाहिए, ऐसी भावना से आये हैं। परन्तु उनकी सद्भावना कितनी भी अच्छी हो, जहाँ उन्होंने रास्ता उल्टा लिया है, वहाँ क्या होगा? मुझे दिल्ली जाना है, परन्तु मैंने रास्ता लिया है परमेश्वर का तो मैं दिल्ली कैसे पहुँचूँगा?

एक दफा मैं और मेरा मित्र बड़ोदा से काशी जाने के लिए निकले। बड़ोदा से सूरत पहुँचे। सूरत से भुसावल की ट्रेन लेनी थी, परन्तु ऐसी ट्रेन ली कि जो सूरत से वापिस बड़ोदा ले जानेवाली थी। आँख खूब बिगड़ी थी और चश्मा नहीं लगाया था। इसलिए बड़ोदा से ट्रेन ली और रास्ते में एकदम भरुच स्टेशन का नाम पढ़ा तो मालूम हुआ कि यह ट्रेन तो बड़ोदा वापस जा रही है। फिर तुरन्त ही वहाँसे पीछे जाने की ट्रेन ली और काशी पहुँचे। इस तरह सहकारी मण्डली को टिकट लेनी है गरीबों के हित की, परन्तु ट्रेन ऐसी ली है कि वह दूसरे का हित करती है।

सर्वोदय में तो सबका हित आता है। परन्तु जो सबसे नीचे हैं, सबसे ज्यादा दुःखी हैं, उनके लिए प्रथम प्रयत्न होने चाहिए। किसीका सच्चा हित किसीके विरोध में नहीं है। इस तरह हम मानते हैं और चाहते हैं, परन्तु जो लोग बड़े होते हैं, वे बड़े हो जाते हैं और छोटे लोग छोटे हो जाते हैं, ऐसी अगर प्रक्रिया हो तो हेतु कितना भी अच्छा हो, वह किस काम का?

सहकारी मण्डलों का निर्माण

बड़ोदा की बात है। एक लड़का बीमार था। डॉक्टर आया। दवा दी और कह गया कि दवा के अतिरिक्त इसे दो-तीन दिन कुछ नहीं खिलाना। दूसरे दिन लड़के की हालत एकदम खराब हो गयी। फिर डॉक्टर आया उसने रोगी को देखते ही कहा कि कल तक इसकी तबीयत अच्छी थी, पर आज एकदम इतनी कैसे बिगड़ गयी! क्या आपने इसे कुछ खिलाया है? माँ ने जवाब दिया, "बहुत ज्यादा नहीं खिलाया है।" डॉक्टर ने पूछा, "फिर कितना खिलाया है?" माँ ने कहा कि "मुझे इसकी तबीयत जरा अच्छी लगी और पाँच-छह दिन से इसने कुछ खाया नहीं था, इसलिए मैंने इसे थोड़ा लड्डू दिया।" माँ ने लड़के को प्रेम से थोड़ा लड्डू खिलाया। माँ की इच्छा नहीं थी कि लड़का मर जाय। परन्तु माँ के इस प्रेम के कारण ही लड़का मर गया। उसने सद्भावना से विष-प्रयोग ही किया

ऐसा कहा जायगा। वह माँ फाँसी पर न चढ़े, उसके लिए कोर्ट में केस न चले, यह बात तो ठीक है, परन्तु लड़का मर गया यह भी उतना ही निश्चित है। ऐसे ही सद्भावनापूर्वक न करने का काम करना आप स्वीकार करेंगे तो भी बुरा होगा। फिर भले ही सद्भावना अच्छी क्यों न रखी हो! इसलिए सहकारी मंडल में ऐसी कोशिश होनी चाहिए कि सारे गाँव में मालिकी विसर्जन हो। फिर सहकारी खेती का आग्रह भी हो। मैं अगर सरकार में होता तो कहता कि सरकार ऐसी सहकारी मंडली को मान्यता दे कि जो दाखिल होने से पहले अपनी जमीन की मालिकी गाँव के हित में विसर्जित करे।

ग्रामदान और बड़े मालिक

इसका अर्थ यह नहीं कि बँटवारे में पाँच बीघा जमीन दी जाय। इसमें कम-ज्यादा करने की गुन्जाइश रहती है। जिस तरह हमने पहले राजा-महाराजाओं की व्यवस्था की, उसी तरह ग्रामदान में जो बहुत बड़े मालिक होंगे, उनके लिए भी कुछ साल की व्यवस्था कर दी जायगी, ताकि उन्हें शुरूआत के दिनों में कठिनाई न हो और थोड़े समय के लिए राहत मिले। उनके लड़के शिक्षित बनकर पराक्रमी हों। फिर निश्चित अवधि के बाद वे साधारण लोगों में मिल जायँगे। इसलिए उनको कुछ विशेष देने की जरूरत नहीं रहेगी। परन्तु आज तो मालिकी किसीकी भी नहीं रहेगी। मेरे कहने का अर्थ यह नहीं है कि लोगों को डराना है, धमकाना है। स्टीम-रोलर से सबको समान कर देने में करुणा नहीं है, हम सबको सुखी करना चाहते हैं, इसलिए प्रेमपूर्वक जितना त्याग कर सकते हैं, उतना करो और दस-पाँच साल तक जैसा चलता है, वैसा चलने दो। इस तरह से अगर करने में आयेगा तो मैं मानता हूँ कि लोग उत्साह से सहकारी मंडल में दाखिल हो जायँगे और सहकारी मंडल का मुख्य उद्देश्य है, उस मुताबिक काम करेंगे।

मैंने मेरा मुख्य विचार आपके सामने रखा है। आप इसपर सोचिये और फिर सम्यक दृष्टि से काम करें, क्योंकि आप भी चाहते हैं कि गरीबों का हित हो। गुजरात में ऐसा कोई नहीं होना चाहिए कि जो गरीबों की परवाह नहीं करता है। ऐसे भारत में भी कोई होना नहीं चाहिए, परन्तु खास करके गांधीजी के गुजरात में, अहिंसा की भूमि में यह होना चाहिए कि गरीबों का अहित हो, ऐसी कोई योजना न बने।

ग्रामदान याने डरने का काम नहीं है। जब तक डर रहेगा, तब तक मैं ग्रामदान चाहूँगा नहीं। किसी भी प्रकार का डर हो, तब तक गाँववाले भले ही विचार करें, परन्तु मैं इसका स्वीकार करनेवाला नहीं हूँ। मुझे ऐसे ग्रामदान नहीं चाहिए। मुझे तो ग्रामदान करके सबको निर्भय बनाना है। ग्रामदान याने हरएक गाँव का एक ही नमूना बने, ऐसा नहीं है। ग्रामसभा जो चाहेगी, उस तरह अपने गाँव का नमूना कर सकती है। इस तरह विचार करके गाँव के बड़े लोगों को समझाया जाय तो ग्रामदान को खूब गति मिलेगी और फिर सहकार के लिए सारा क्षेत्र खुला रहेगा। फिर सारे गाँव सहकारी मंडल में दाखिल होंगे और किसीको भी इसमें दाखिल होने में संकोच नहीं होगा, डर नहीं लगेगा।

● ● ●

प्रार्थना-प्रवचन — सिद्धपुर २९-१२-'५८

आन्दोलन के विविध दर्शन

[सिद्धपुर पड़ाव पर विनोबाजी से पी० एस० पी पार्टी के कुछ समाजवाद पर विचार करनेवाले मित्रों ने काफी दिलचस्प प्रश्न किये। इन प्रश्नोत्तरों में आज की कई समस्याओं पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। सबकी उपयोगिता को ध्यान में रखकर वे प्रश्नोत्तर यहाँ दिये जा रहे हैं। सं०]

विश्व के साथ सम्बन्ध

प्रश्न : (१) यह विज्ञान का युग है। इस युग में हम सारे विश्व के साथ अहिंसा की भूमिका पर किस प्रकार जुड़ सकेंगे?

उत्तर :- यह प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और व्यावहारिक है। इस प्रश्न का उत्तर समझने से पहले हमें यह मान लेना चाहिए कि बुद्धि और मन के बीच ऐक्य नहीं है। इसी तरह का दूसरा सवाल हिंसा और अहिंसा के बीच भी है। हिंसा द्वारा काम जल्दी कर लेने की इच्छा निरी वासना है। अतः हिंसा में पड़ने का हम मोह न करें। फिर भले ही दूसरे मार्ग से अधिक समय लगे।

यह भूमिका समझ लेने के बाद मैं मूल प्रश्न पर आता हूँ। कुछ उदाहरणों से आपका प्रश्न ठीक तरह हल हो सकेगा। गोवा की ही बात लीजिये। यदि आज विज्ञान का युग न होता तो वह प्रश्न कभी का हल हो जाता और सारी दुनिया को पता ही नहीं चलता। परन्तु आज तो वह छोटा सा प्रश्न भी अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बन गया है। इसी तरह आपके यहाँ गुजरात में एक जगह तेल निकला है। लेकिन वह केवल गुजरात का ही नहीं, बल्कि पूरे भारत का माना जाता है। आगे चलकर वही तेल अखिल विश्व का माना जायगा। फिर उससे सम्बन्धित निर्णय दिल्ली में न होकर विश्व के किसी एक केन्द्र में होंगे, ताकि समस्त राष्ट्र उस तेल से लाभान्वित हो सकें। तेल की भाँति आगे चलकर हर तरह के प्रश्न व्यापक होते जायँगे। उनका निर्णय विश्व-केन्द्र' में होगा। जो प्रश्न व्यापक नहीं होंगे, वे स्थानीय होंगे। स्थानीय निर्णय विकेन्द्रित होंगे। स्थानीय निपटारे के लिए रिफेन्स के तौर पर उन्हीं लोगों से पूछा जायगा, जो विशिष्ट योग्यतावाले राग-द्वेष रहित पुरुष होंगे। इससे तत्काल सारे प्रश्नों का समाधान हो जाया करेगा।

आज तो महागुजरात का प्रश्न ही देखिये। कितना लम्बा हो रहा है, लेकिन विज्ञान-युग में ऐसे निपटारे के लिए अमेरिका, रूस, जापान आदि के वे लोग भी होंगे, जो निर्णायक बुद्धि-वाले माने जाते हैं। वैसे सभी लोग सम्मिलित रूप से निर्णय देंगे, यह मान लिया जायगा।

उपकरणों की विपुलता और वासनाओं का ह्रास

प्रश्न : (२) विज्ञान के कारण भौतिक सुख-सुविधाओं का प्राचुर्य हो रहा है। क्या यह ठीक है?

उत्तर :-विज्ञानयुग में उपकरण उत्तम और विपुल रहेंगे। आँखों के लिए अच्छे से अच्छे चश्मे चाहिए तो वे सुलभ होंगे। किन्तु उसके साथ ही ऐसे भी लोग होंगे, जिन्हें चश्में की जरूरत ही न रहेगी। इसी तरह हर रोग के लिए अच्छी से अच्छी औषधि सुलभ होगी। एक ही डॉक्टर से दवा लेने की परतन्त्रता न रहेगी। किन्तु ऐसे भी लोग रहेंगे, जिन्हें दवा की कोई जरूरत ही न पड़े। गाँव-गाँव में मोटरें उपलब्ध रहेंगी, लेकिन कहीं पास में व्याख्यान सुनने जाना हो तो लोग पैदल ही जायँगे। उनमें इतनी

www.vinoba.in

क्षमता बनी रहेगी। इतना ही नहीं, आगे चलकर मेरे जैसे व्यक्ति का व्याख्यान सुनने और देखने के लिए हवाई जहाज पर बैठकर कहीं जाने की आवश्यकता न रह जायगी। घर बैठे ही मेरा व्याख्यान सुन सकें और मुझे देख सकें, वैसी सुविधाएँ उपलब्ध होंगी। इस तरह विज्ञान युग में भोगवासना कम से कम होगी और भोग के साधन प्रचुर रहेंगे।

प्रश्न (३) विज्ञानयुग में भोगवासना घट ही जायगी यह कैसे संभव है ?

उत्तर : विज्ञानयुग में लोग समझ जायँगे कि भोगों से इन्द्रियाँ क्षीण होती हैं। इससे भोगमर्यादा आयेगी। लोग अधिक भोग से विरत होंगे। फिर कहीं भी लोग रात-रात तक जागकर सिनेमा न देखेंगे। निःस्वप्न नींद का महत्त्व समझेंगे। आज तो इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि में सप्ताहान्त के अवसर पर कुछ ही लोग खेतों में जाकर खुली हवा और खुले आकाश का आनन्द लेते हैं, किन्तु फिर कहीं कोई इस मुक्तानन्द से वंचित न रहेंगे। सच पूछें तो उस समय अभीके ये दस-दस बारह-बारह मंजिले मकान खाली ही पड़े रहेंगे। जो लोग आज गगन-चुम्बी अट्टालिकाओं से नीचे ही नहीं उतरते, वे भी समझ जायँगे कि खुले आकाश में कितना आनन्द आता है! विज्ञान-युग में बीड़ी पीकर लोग व्यर्थ में अपना कलेजा न जलायेंगे। जैसे-जैसे विज्ञान की परिपूर्णता होगी, वैसे-वैसे मानव का भी पूर्ण विकास होगा।

मान लीजिये, कल अगर व्यक्तिगत मालकियत मिट जाय तो तत्काल समझ में आ जायगा कि काम, क्रोध आदि से शारीरिक शक्ति का कितना दुरुपयोग होता है। जब पूरी समझ होगी, पूरा ज्ञान होगा, विज्ञान होगा, तभी आप यह अनुभव कर सकेंगे। अभी पूरा विज्ञानयुग नहीं आया है। मैं जो बात कह रहा हूँ, वह आगे की है। यही कारण है कि यह बात तत्काल ध्यान में नहीं आ पाती।

पत्थर से गोली अहिंसा के निकट

प्रश्न :—(४) आपने एक बार कहा था कि 'पत्थर की अपेक्षा गोली अहिंसा के ज्यादा नजदीक है।' इस विषय में कुछ स्पष्टी-करण कीजिये।

उत्तर :—समाज में अगर कोई किसीको गोली मारता है, तो वह पत्थर से अधिक अच्छी नहीं मानी जायगी। लेकिन सरकार के लोग गोली चलायें तो वह ठीक भी हो सकता है। क्योंकि सरकार के पीछे लोकमत और कानून है, इसीलिए जहाँ लोग पत्थर फेंकें और उससे विशेष हानि न हो, फिर भी न्याया-धीश कभी यह निर्णय दे सकता कि वह उचित है? वहाँ वह कदाचित् यह निर्णय दे सकता है कि गोली चलानेवाली सरकार का पक्ष उचित है। इसी अभिप्राय से मैंने कहा कि 'पत्थर की अपेक्षा गोली अहिंसा के अधिक निकट है।'

क्षोभ के कारण सवालों का हल कहाँ

प्रश्न :-(५) आपके मतानुसार मन से ऊपर उठकर बुद्धि की भूमिका पर जाना चाहिए, किन्तु आक्रमण, अकाल, अतिवृष्टि आदि अवसरों पर बुद्धि के स्तर पर निर्णय कैसे किये जा सकते हैं?

उत्तर :-जब तक मन में क्षोभ रहेगा, तब तक सवालों का हल नहीं हो सकता। आज तो लड़ाइयों में भी क्षोभ के लिए अवकाश नहीं है। पहले की लड़ाइयों में मनःक्षोभ की गुंजाइश थी। हाथ में तलवार उठाकर दूसरे को मारने के लिए जाते समय क्षोभ पैदा हो सकता था, लेकिन आज की लड़ाइयाँ गणित की तरह चलती हैं। दस कदम आगे रहे तो आगे रहना पड़ेगा और दस कदम पीछे रहे तो पीछे रहना होगा। यानी आज के युद्ध में डरने से काम नहीं चलेगा। ठीक-ठीक वैज्ञानिक और गणित की दृष्टि से लड़ना होगा। इस मनःक्षोभ के लिए गुंजाइश नहीं है, न आवेश और मरने की बात ही है। मनः-क्षोभ के कारण तो कुछ क्षण व्यर्थ ही जाते हैं। इसलिए उससे काम जल्दी होता है, यह मानना गलत है। इसी तरह दूसरे प्रश्नों के बारे में भी निर्णय देते समय सोचना चाहिए।

राष्ट्रवाद और विश्ववाद

प्रश्न :-(६) जैसे जातियों से आग लगती है तो क्या राष्ट्र-वाद से भी इसी तरह आग लगती है?

उत्तर :-जैसे जातियों के रहने से आग लगती है, वैसे ही विज्ञानयुग में राष्ट्रवाद भी ठीक नहीं है। अब वह टिक भी नहीं सकेगा। इसलिए मैंने जय जगत का नारा लगाया है। कुछ लोग कह रहे हैं कि यह तो अपरिपक्व है। लेकिन यदि हम 'जय हिन्द' कहकर रुक जायँगे तो दुनिया में गतिरोध खड़ा हो जायगा। हमें समस्त विश्व के साथ सम्बन्ध जोड़ना है। सारे विश्व की भलाई में हिन्द की भी भलाई निहित है। इसलिए अब हम सारे संसार के कल्याण की बात सोचें। राष्ट्रवाद का सिद्धान्त पुराना पड़ गया है। अब हमें विश्ववाद का सिद्धान्त कायम करना होगा।

विज्ञान से लाभ उठायें

प्रश्नः-(७) विज्ञान से लाभ उठाकर छोटे-छोटे उद्योगों में सुधार किया जाय या नहीं?

उत्तरः-छोटे-छोटे सुधार होने ही चाहिए। पुराने औजारों से ही काम करते रहना ठीक नहीं है। उत्पादन अधिक हो, गाँव में किसीका शोषण न हो और सब कोई लाभान्वित हों, ये बातें ध्यान में रखकर विज्ञान का जितना भी उपयोग हो प्रसन्नतापूर्वक किया जा सकता है।

आग्रही 'विचार' 'अविचार' है

प्रश्न :-(८) जहाँ विचार-भेद हों, क्या वहाँ पक्ष बनने की संभावना नहीं है?

उत्तर :- यह सच है कि विचार-भेद रहेंगे ही। लेकिन दल रहेंगे, यह बात सच नहीं है। अविचार हों, तभी दल बन सकते हैं, अन्यथा नहीं। यदि विचार के साथ आग्रह आ जाय तो मान लेना चाहिए कि वह अविचार है।

अपने बल पर खड़े हों

प्रश्नः-(९) सरदार के चले जाने के बाद गुजरात दुर्बलता महसूस करता है। इसके मिटाने का क्या उपाय है?

उत्तर :- मुझे यह अच्छा ही लगता है कि अब कोई सरदार नहीं है। यदि दुःख सुननेवाला कोई उपस्थित रहता है तो हम बच्चों जैसे बन जाते हैं। यह युग बच्चों का नहीं, परिपक्व बुद्धि-वालों का युग है। समाज ज्यों-ज्यों सामाजिक प्रश्नों में रुचि बढ़ाता जायगा, त्यों-त्यों सलाह देनेवाले लोग भी निकलते रहेंगे। पहले के जमाने में लोग प्रकाश तथा मदद देते थे, लेकिन आज के युग में नेता लोग केवल सलाह देकर मुक्त हो जायँगे। सरदार वगैरह केवल बिना ही कहे संगठन आदि भी किया करते थे। लेकिन नये जमाने के नेता जनता को सलाह तो देंगे, पर विशेष आग्रह नहीं रखेंगे। इसलिए इस जमाने में आप सबको अपने बल पर ही खड़ा होना होगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'लेसर इविल' के नाम पर

प्रश्नः— (१०) हिंसक साधनों की अपेक्षा 'लेसर इविल' या कम बुराई के साधन' को तौर पर यदि हम हड़ताल का उपयोग करते हैं, तो वह उचित क्यों नहीं है ?

विचार करने की यह पद्धति सर्वदा अवैज्ञानिक है। इसीके कारण गोलीबार चलता है। उसके पीछे भी यही मनोवृत्ति काम करती है। सरकार के मन्त्री बन जायँ तो क्या उन्हें मानव के नाते जनता के बीच पहुँचकर मारकाट में खड़ा नहीं रहना चाहिए ? मैं मानता हूँ कि यदि मन्त्री लोग ऐसी हिम्मत करें तो वे लोगों को शान्त कर सकते हैं। बड़ा आदमी घटनास्थल पर पहुँच जाता है तो उसका असर होता ही है। लेकिन इन लोगों को यह विचार ही नहीं सूझता। आज तो गोली चलानेवाले हैं, इसी लिए गोली चलायी जाती है। फिर आश्चर्य की बात तो यह है कि इन गोली चलानेवालों में गांधीवाले भी हैं। ये लोग कहते हैं कि आपको दुःख होता है तो हमें उससे अधिक दुःख होता है, फिर भी हम लाचार थे। यह पूछने पर कि आखिर यह पाप हुआ या नहीं ? तो कहते हैं—हाँ, पाप तो हुआ, पर क्या किया जाय ? दूसरा रास्ता ही नहीं था।

इस तरह 'लेसर इविल' की कल्पना ही गलत है। आपके आन्दोलन का मैंने बारीकी से अध्यन नहीं किया, अतः विशिष्ट परिस्थिति में मेरा यह कहना कितना उचित है, यह मैं नहीं जानता।

मन को ग्रहण न लगने दें

प्रश्नः— (११) हमारे आन्दोलन का कैसा रूप हो ?

उत्तरः— आपका आन्दोलन ऐसा होना चाहिए, जो सबको छू सके। भले ही कोई छोटी ही बात हो, पर वह सभीको स्पर्श करनी चाहिए। कल मैंने हरिजनों से कहा कि हरिजन-उद्धार की बात अब पुरानी हो गयी, अब तो सर्वजन-सेवा कीजिये। उसमें जो दुःखी होगा, वह सहज आ जायगा। इसलिए हम ऐसे ही काम लें, जो सबको छू सकें। ऐसा करने पर बहुत बड़ी शक्ति पैदा हो सकती है। भगवान बुद्ध ने ऐसा काम लिया, जिसका सबको स्पर्श होता था।

यदि हम छोटा-सा सवाल लेकर उतने भर ही दृष्टि रखेंगे तो वह व्यापक समाज को स्पर्श न करेगा। अतः भूदान का काम करें या और कोई, उसका स्पर्श सबको होना चाहिए। यदि इसके बदले एक विशेष प्रश्न हाथ में लेकर सारी शक्ति उसी पर केन्द्रित करेंगे तो वह सवाल जब तक हल नहीं होगा, तबतक उससे अधिक महत्त्व के काम की ओर ध्यान ही नहीं जायगा।

मैं महाराष्ट्र में यात्रा करता था, वहाँ एक ओर दूर-दूर से ग्रामीण लोग मेरा भाषण सुनने आते थे, दूसरी ओर सभा में कुछ लोग हुल्लड़ मचाते कह रहे थे—'संयुक्त महाराष्ट्र झालाच पाहिजे' याने संयुक्त महाराष्ट्र बनना ही चाहिए। एक बार तो कितने ही लड़के जोर-जोर से हल्ला करने लगे कि 'संयुक्त महाराष्ट्र झालाच पाहिजे' तो मैंने उनसे कहा—'संयुक्त राष्ट्र झालाच पाहिजे।' यह तो ठीक है, 'पण असे ओरडलेच पाहिजे का ?' लेकिन क्या ऐसा चिल्लाना भी चाहिए ? यह सुनकर सभी लोग हँसने लगे। इस तरह जब मन को ग्रहण लग जाता है तो वह वहीं चिल्लाने लगता है। इसलिए हमारा आन्दोलन ऐसा ही हो, जो सबके हृदय को छू सके।

हम लोग आश्रम खोलते हैं तो उसका एक ढाँचा बन जाता है। यहाँपर चर्मालय, कोल्हू, बढ़ईकाम आदि पचासों प्रकार की विद्याएँ सिखाइ जाती हैं, लेकिन सब विद्याओं की शिरोमणि 'ब्रह्मविद्या' नहीं सिखाई जाती। इसीलिए हम जहाँ भी जाते हैं, वहाँ मनुष्य-मनुष्य के बीच में परदा देखते हैं। यह स्थिति अच्छी नहीं है। हमने पचासों विद्याएँ सीखीं, पर ब्रह्मविद्या नहीं सीखी तो कुछ भी नहीं सीखा।

शिक्षा और तनख्वाह

आक्सफोर्ड या केम्ब्रिज से शिक्षा पाकर आनेवाले लोग ज्यादा तनख्वाह माँगते हैं, यह एकदम अवैज्ञानिक बात है। ज्यादा तनख्वाह तो उन्हें मिलनी चाहिए, जो कम पढ़े-लिखे या अशिक्षित हैं। शिक्षित लोगों के पास बुद्धि है। खाने, पीने, पहनने, ओढ़ने और साधारण व्यवहार करने का जीवन दर्शन है। वे बीमारी से बचना और बीमारी आ जाने पर कैसे क्या करना, यह सब जानते हैं। इसलिए वास्तव में उनका खर्च कम है। लेकिन अशिक्षितों को जीवन का रहन-सहन मालूम नहीं है। उन्हें बीमारी आदि अवसरों पर ज्यादा खर्च करना पड़ता है। वे हर तरह से मजबूर हैं। उनकी अवस्था को देखते हुए शिक्षितों को ही समाज से यह कहना चाहिए कि "लोगों ने हमारी शिक्षा पर ज्यादा खर्च किया है, इसलिए हमें जरा कम तनख्वाह दीजिये और ज्यादा तनख्वाह उन्हें दीजिये, जिनपर शिक्षा के लिए ज्यादा खर्च नहीं हुआ है।" पर आज तो शिक्षित लोग इस तरह की माँग करने के बजाय उल्टी यह माँग करते हैं कि हमारी शिक्षा पर ज्यादा खर्च हुआ, इसलिए अब सारे गृह-जीवन पर भी और ज्यादा खर्च होना चाहिए।

शिक्षा हमें जीने का सही तरीका सिखाती है। यदि शिक्षित होने के बाद भी हम जीने की कला न सीख पाये तो वह शिक्षा किस काम की ?

आज पढ़े-लिखे लोग सड़कों पर बेकार घूमते हैं, यह सुनकर मुझे ताज्जुब होता है। उनसे तो एक अनपढ़ किसान ही भला, जो कमाकर रोटी खाने की कला तो जानता है। हमें शिक्षा की वास्तविकता समझनी चाहिए। ● ● ●

अनुक्रम

१. समाज मे ओतप्रोत···	सणोसरा	११ नवम्बर पृ० ८९
२. चिन्तन और कर्म···	बालम	२७ दिसम्बर ,, ९०
३. मालकियत के···	अंकलेश्वर	३ अक्टूबर ,, ९२
४. आन्दोलन के विविध···	सिद्धपुर	२९ दिसम्बर ,, ९४

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पताः राजघाट, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १२८५ तार : 'सर्व-सेवा' वाराणसी

www.vinoba.in